DR. SUMAN LAL RAY
Guest Assistant Professor
Deptt. of Sanskrit
S.R.A.P. College, Barachakia
BRABU-Muzaffarpur

B.A.(Hons.) Part — I
Sub. — SANSKRIT
Paper — I

5×3=15 Marks.

कारक प्रकरणम् —
कारक-सूत्र व्याख्या
द्वितीया विभक्ति

1. कर्तुरीप्सिततमं कर्म ॥1/4/49॥

कर्ता को क्रिया द्वारा पाने के लिए जो सर्वाधिक इष्ट हो, वह कारक संज्ञक होकर कर्मसंज्ञक हो — यह सूत्रार्थ है। तात्पर्य यह कि कर्ता जिस क्रियान्वयी पदार्थ को अपने व्यापार से प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक चाह या इच्छा रखता है, उसकी कर्मसंज्ञा होती है। यथा—

'देवदत्तः हरिं भजति'। यहाँ भजन क्रिया से सम्बद्ध करने के लिए देवदत्त आदि कर्ता को 'हरि' की अत्यन्त चाह है, इसलिए हरि को 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' से कर्मसंज्ञा होने के बाद 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया होती है। इसी प्रकार 'सः मूर्तिं पश्यति' — वह मूर्ति को देखता है; इस वाक्य में दर्शन क्रिया के द्वारा कर्ता मूर्ति को विशेषरूप से प्राप्त करना चाहता है अर्थात् मूर्ति को अपनी दर्शन क्रिया का विषय बनाना चाहता है, अतः मूर्ति की दर्शन क्रिया के प्रति कर्मसंज्ञा होती है और उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है।

2. कर्मणि द्वितीया. (2/3/2)

अनुक्त कर्म में अर्थात् — कर्म उक्त न रहने पर द्वितीया विभक्ति होती है। 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र में 'अनभिहिते' की अनुवृत्ति आयी है, जो 'कर्मणि' का विशेषण बन गया है। अतः सूत्रार्थ हुआ — 'अनुक्ते कर्मणि द्वितीया'।

यथा — देवदत्तः हरिं भजति' — यह 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र का उदाहरण है। यहाँ भजन क्रिया से सम्बद्ध करने के लिए देवदत्त आदि कर्ता को हरि की अत्यन्त चाह है, इसलिए 'हरि' को 'कर्तुरीप्सिततमं' — सूत्र से कर्मसंज्ञा होने के बाद 'कर्मणि द्वितीया से द्वितीया होती है।

— 0 —

क्रमशः जारी

Scanned by TapScanner